साथ ही फादर्स डे मदर्स डे वेलेंटाइन डे आदि को मनाते हैं पर नाग पंचमी वसंत पंचमी मकर सक्रांति क्या होते हैं नहीं जानते हम अमलतास व कचनार के फूल का रंग नहीं जानते I आज हमें पिज्जा बर्गर का स्वाद खूब पता है परदेसी पकवानों को देखकर उनकी पहचान पहुंचते हैं I आज किसी भी अवसर पर ग्रीटिंग कार्ड के कागज दिए जाते हैं लेकिन तीज त्यौहार पर क्या पकवान बनते हैं – यह धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं Iआज हम घर में बाजार द्वारा परोसी गई खिचड़ी भाषा का प्रयोग करके अपनी संस्कृति से कट रहे हैं Iवही हालात महानगरों में हिंदी दिवस को हिंदी डे बना देते हैं I हमारे यहां विदेशी संस्कृति फैलाने का कार्य मीडिया ने ही किया है और इसी कारण हमारी संस्कृति हमारे हाथों में साबुन की तरह फिसलती जा रही है I[4]

वैश्वीकरण व बाजार की भाषा-, वैश्वीकरण का सीधा संबंध बाजार से होता है और बाजार का संबंध भाषा से होता है I आज लेखक से ज्यादा बाजार तय करने लगा है कि आपको यह लिखना है यह लिखोगे तो ज्यादा बिकेगा I बाजार का यह रवैया भाषा के मौलिक स्वरूप को बिगाड़ रहा है I जिन लेखकों के विचारों में गहराई है मौलिकता है उसको बाजार नकार दे रहा है और कुछ लेखक जिनका लेखन प्रभावशाली ना होते हुए भी बाजार के जरिए खूब बिक रहा है तब समझ आता है कि बाजार पाठक व लेखक के बीच कैसी दूरी पैदा करते हैं और मौलिक साहित्य का अभाव होता जा रहा है I जब पाठक किसी साहित्य को नकारता है तो बाजार विज्ञापन के जरिए हिंदी साहित्य जगत पर जनता की पसंद को प्रचारित करता है I ऐसे साहित्य में किसानों की आत्महत्या, बेरोजगारी का दंश झेलते युवा, हाशिए के लोग का सुख-दुख गांव में नगर व जीवन-बोध की चर्चाएं न के बराबर रहती हैं I इसलिए हमें समझना चाहिए कि हिंदी के प्रकाशक शुद्ध व्यवसायी हो गए वह वही किताबें छापते हैं जिनकी बाजार में मांग है I[5]

सोशल मीडिया व टी.वी की भाषा मीडिया व टीवी चैनलों के माध्यम से जो कुछ दिखाया जा रहा है उससे हमारा समाज दिशाहीन होता जा रहा है तथा संस्कृति को प्रदूषित किया जा रहा है I मास मीडिया ने हिंदी को बाजारु भाषा में बदल दिया है I जैसे हिंदी फिल्मकार हिंदी में फिल्म इसलिए बनाते हैं क्योंकि यह ज्यादा लोगों द्वारा बोली व समझी जाती हैं जिससे वह अपना अच्छा व्यवसाय कर सके लेकिन प्रमोशन के समय अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं I वर्तमान दौर में फिल्मों के नाम व उन में प्रयुक्त गानों में अंग्रेजी का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है तथा भाषा का स्वरूप बिगड़ रहा है I इसका कारण महानगरों में आम बोल चाल की भाषा में अंग्रेजी के शब्द आ रहे हैं वही शब्द अब टीवी पर आने लगी आज व्हाटसप व फेसबुक की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग हो रहा है I

इस प्रकार आज के दौर में हिंदी के सामने कई प्रकार की चुनौतियां बड़ी हैं I इन सब के बावजूद हिंदी का वजूद कायम है I आज खतरा इस बात का नहीं है कि दूसरी भाषा के शब्द हिंदी में आ रहे हैं I बल्कि यह देखना है कि इनसे हिंदी का मूल स्वरुप क्षतिग्रस्त न हो जाये I हिंदी की व्यापकता और गहराई समय के साथ बढ़ानी है Iसभी को सतर्क रहना होगा कि हम सभी हिंदी के मूल स्वाभाव (स्वतंत्रता, स्वाभिमान, सामाजिकता, सर्वग्राह्यता) को बनाये रखें I

****

सन्दर्भ –

1.सुशील देसाई : उत्तर आधुनिकता, रावत प्रकाशन, जयपुर, 2015, पृष्ठ -321
2.विश्वनाथ त्रिपाठी : देश के इस दौर में
3.हरिशंकर परसाई : विज्ञापन में नारी
4.जनसत्ता (दिल्ली) 2012
5.दैनिक भास्कर (जयपुर) 2010

संजीव की कहानियों में व्यक्त मानवीय संवेदना का विश्लेषण

डॉ. पी.एम.आर. जयन्ती
प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एस.के.आर. एवं एस.के.आर. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय (स्वायत्त) कडप्पा (आंध्र प्रदेश)

समकालीन कथाकारों में संजीव का नाम उनकी श्रेष्ट कहानियों के लिए प्रसिद्ध है। वे समकालीन जीवन की विडंबनाओं को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। इनकी रचनाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाविष्ट संघर्ष स्थितियों को गहराई से चित्रित करती हैं और मानवीय संवेदना को उभारती हैं। वे समाज के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर हाशिए पर खड़े लोगों के जीवन, संघर्षों और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करती हैं। इस संदर्भ में डॉ. गजानन किशनराव पोलेनवार का कथन समीचीन है "संजीव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हाशिए पर जीवन जीनेवाले उपेक्षित एवं शोषित आदिवासी जनजातियों की संघर्ष गाथा को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करते हुए आदिवासी जीवन के विविध संदर्भों का अध्ययन-अन्वेषण कर उन्हें रचनात्मक रूप प्रदान किया है। संजीव की दृष्टि व्यापक संदर्भों से जुड़ी हुई है, जिसमें उनकी रचनात्मकता के विविध आयाम दिखाई देते हैं। उन्होंने समाज के शोषित, दलित और उपेक्षित वर्ग को अपने लेखन का विषय बनाया है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण, आंचलिक, मेहनतवश तथा शोषित वर्ग का चित्रण है। सामाजिक वर्ग-भेद के परिप्रेक्ष्य में संजीव का कथा साहित्य महत्वपूर्ण है। शोध और श्रम के आधार पर उनका लेखन हिन्दी में अपनी अलग पहचान बनाता है।

संजीव की कहानियों में मानवीय संवेदना का विश्लेषण करते हुए हमें यह अनुभव होता है कि इनकी कहानियाँ व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विशिष्ट पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जहाँ मानवीय मूल्यों का प्रामाणिक विश्लेषण प्राप्त होता है। इसके अलावा संजीव की कहानियाँ जीवन की उलझनों को गाँव से लेकर नगर, गरीबी से लेकर अमीरी, दलितों से लेकर जमींदारों व सामंतों और आदिवासी जीवन तक व्यापक रूप सेचित्रत करती हैं, जैसे राहुल सिंह ने व्यक्त किया है "उनक कथा संसार पात्रों और अनुभवों के धरातल पर इतना वैविध्यमूलक है कि कई बार भ्रम होता है कि क्या यह एक ही व्यक्ति के द्वारा रची गई कहानियाँ है।

संजीव की कहानियों में मार्क्सवादी चिंतन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को गहराई से चित्रित करत हैं। उनकी कहानियाँ वर्ग संघर्ष, शोषण और उत्पीड़न क मुद्दों को उभारती हैं, जो समाज के वंचित और शोषित वर्गों के संघर्ष

को उजागर करती हैं। संजीव ने 'तीस साल का सफर नामा' कहानी में पूँजीवादी सभ्यता द्वारा गरीबों का शोषण आजादी के तीस साल बाद भी किए जाने का यथार्थ चित्रण किया है "चंद सालों पहले कानूनगो साहब का इनका जब इस जगह आकर रूका था तो ऐसी ही लार बह चली थी लेकिन नंबरदार ने ए.सी.ओ. को अछैबर सिंह के यहाँ, कानूनगो को रामखेलाबन यादव के यहाँ और दतर सरयू पांडे के यहाँ लगावा दिया तो बाकी लोग म्यूजिकल चेयर से पराजित खिलाडियों की तरह उदास हो गए। यहीं से शुरु होती है भूमि सुधार, यानि चकबदी की कहानी।

' टीस' कहानी में पूँजीवादी सभ्यता का पर्दाफाश किया गया है, जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को उजागर करती है। "अच्छा तो देखिए, रोड़ पर जा रहा है एक नंबर का अजगर मुखिया पिनाकी महतो । जितना सरकारी पैसा और सामान गाँव के लिए मिलता है, सब साला के पेट में जाता है। पीछे पीछे जा रहा है उसका लड़की पत्तो। ढेमना (धामिन) है ढेमना। बड़ा बड़ा बी.डी.ओ., एस.डी.ओ., कोलरी मैनेजर, ठीकेदार का पा (पैर) बाँध के दूध पी जाता। कपड़ा और मुदीखाना का दुकानवाला सेठ लोग राजस्थान का पीवण नाग हैं। सुबेदार रामबली राय गंगा के किनारे का चित्ती (करैत) है तो मनुमी जमेशर सिन्हा बोड़ा साँप है।" स्पष्ट है कि पूँजीवादी सभ्यता के शोषणकारी और संवेदनहीन स्वरूप के प्रभाव से वंचित गरीब समाज संघर्ष के कगार पर खड़ा हुआ है।

धनुष टंकार' कहानी में पूँजीवादी व्यवस्था की कठोर सच्चाइयों और उससे व्याप्त अन्याय को बेनकाब किया गया है, कहानी का निर्मल बाबू एक निस्वार्थ और समर्पित नेता है। जो मजदूरों के हक और न्याय के लिए संघर्ष करते हैं तो उनका काम से निष्कासन किया जाता है।

'भूखे रीछ' कहानी में भी मजदूरों के प्रतिरोध, संघर्ष और कारखाना मालिक के शोषण को गहेराई से उजागर किया गया है "इधर हम साले इस्ट्राइक करते हैं, धरना देते हैं, कुत्तों की तरह छीना झपटी करते हैं, ऊपरटैम, परमोसन, क्वार्टर के टुकडों पर दुम हिलाते हुए साहबों के पीछे पीछे चलते हैं फिर भी पेट नहीं भरता!" मालिक मजदूरों को कम वेतन देकर और उनके काम के समय को बढ़कर उनका शोषण करते हैं। 'नेता' कहानी में समाज के वंचित और शोषित वर्गों का सजीव चित्रण किया गया है। यह शोषण आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर होता है। उच्च वर्ग के लोग अपने फायदे के लिए इन वर्गों का शोषण करते हैं और उन्हें अपने अधिकारों से वंचित रखते हैं। 'राख' कहानी में समाज के जमींदारी व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वे गरीब किसानों और मजदरों को अपने अधीन रखने के लिए निर्दयता एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार करने के लिए तैनात रहते हैं। उनकी स्वार्थ प्रवृत्ति के कारण समाज में असमानता और अन्याय बढ़ता है। "कायदे से तो महतो को उस फूटी आँख का भी हरजाना देना चाहिए।

संजीव ने अपने कथासाहित्य में किसान जीवन की वास्तविकताओं व जटिलताओं को गहरी संवेदना के साथ रेखांकित किया है। किसान जीवन से जुड़े उनके कथासाहित्य में गहन चिंतन, अध्ययन, मनन और अनुभव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। संजीव का बचपन ग्रामीण किसान की दयनीय एवं तंगहाली में बीता। अतएव उनके कटु जीवनानुभवों का पर्याय ही उनकी कहानियाँ हैं। हम संजीव की इन कहानियों में चित्रित ग्रामीण किसान जीवन के संघर्ष और मूल्य संवेदना विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे, ताकि उनकी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण किसान और उनकी संघर्ष चेतना को बोधगम्य बनाया जा सके।

संजीव की कहानी "तीस साल का सफर नामा" में आजादी के बाद के गाँवों का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। कहानी का केंद्रबिंदु कुसुमपुर गाँव है। कुसुमपुर की नियति पूरे देश की नियति है "और जनाब कुसुमपुर की नियति को फुला दीजिए तो यह पूरे देश की नियति हो जायेगी"

संजीव की 'पिशाच' कहानी में गाँव के पुराने सामंत और नए सामंत वर्ग का यथार्थ चित्रण किया गया है। आजादी के पूर्व पुराने सामंत गाँव के, गरीबों, किसानों, मजदरों और नारियों का शोषण करते थे। तो आजादी के बाद गाँव के प्रधान, सरपंच, ग्रामपंचों और जमींदारों के रूप में नए सामंत उभर कर आए हैं। कहानी का मुख्य पात्र महात्म बाबा गाँव क पुराने सामंत है। सारा गाँव उनकी पुरानी रयत था। समय बदलता है और रमेशर गाँव का प्रधान बन जाता है। अब रमेशर गाँव की जमीन हड़पने लगता है। यहाँ तक कि महातम बाब की ज़मीन भी हड़प लेता है। बाबा पुराने सामंत है और रमेशर नया सामंत है। "बाबा में एक कटिन पुरोहित और मगरूर सामंत भर था, जबकि रमेशर में उस पुरोहित और सामंत के अलावा एक काइयाँ मुनीम और मक्कार बनिया भी है। तुम बच्चे से जवान, जवान से बूढ़े होकर मर जा ओगे, लेकिन यह पिशाच यूँ नहीं मरनेवाला।" भारत की स्वतंत्रता के पचास साल बाद यहाँ गाँवों में भूमि संबंधी समस्या का हल नहीं हुआ है। सामंती व्यवस्था और पूँजी व्यवस्था नये रूप में अपना वर्चस्व दिखाती जा रही है, जिससे गरीब किसानों व मजदरों की दशा और बदतर होती जा रही है। "पूत पूत ! पूत पूत!" कहानी में इसी समस्या को रेखांकित किया गया है। "आजीद के बाद भी देश के हजारों लाखों गाँवों की तरह ही मेरे गाँव की ज्यादातर ज़मीन भी अभयानंद शर्मा, शिवशंकर सिंह, अखोरी साह और राजा के मुनीम जमनलालजी के परिवारों के पास ही रही।" गरीबों व मजूरों के पास ज़मीन न रहने के कारण उन्हें मजबूरन इन जमींनदारों के यहाँ खेती या मजूरी करनी पड़ती है।'मरजाद' कहानी ग्रामीण राजनीति में आरक्षण व्यवस्था की पोल खोलती है। मिसिर जी प्रधान के पद पर अपने नौकर धनपत को खड़ा करते हैं क्योंकि "गाँव ओ.बी.सी. के कोटे में आ

गया है, खुद तो खड़ा नहीं हो सकता था सो धनपतिया को खडा कर दिया ताकि परधानी को डोर अब भी उसी के हाथ में रहे और वो चुड़ैल शांता दौड़ दौड़कर उसके सारे काम करती रहे।" मिसिर जी की इच्छा से धनपत करीमपुर गाँव के नए प्रधाव बन गए। किंतु इससे उसके सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। गाँव के परधान के पद पर चुने के बावजूद वह मिसिर जी के सामने ऊपर नहीं बैठ सकता। धनपत अपनी इस हालत के बारे स्वयं कहता है "हम तो भरत हैं, राम जी जब तक गद्दी पर नहीं विराजते, उनके खडाऊँ...' यानी मंसा मिसिर की, परधानी धनपत की, काम शांता देवी का इस तरह चल रहा था करीमपुर का।" इस प्रकार इस कहानी में किसान वर्ग में एकता के अभाव की ओर इशारा किया गया है।

भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था का अस्तित्व प्राचीन काल से देखा जाता है। किंतु जाति या वर्ण-व्यवस्था मानव जीवन को व्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से बनायी गयी है। ताकि लोग आपस में मिलजुलकर रहते हुए अपने अपने व्यवसाय में लगे रहे। समय के साथ - साथ वर्ण-व्यवस्था का यह रूप बदलता गया। मानव मिलजुलकर रहने की अपेक्षा जाति या वर्ण के नाम पर बिछुडता गया। परिणामतः लोग में ऊँच-नीच की भावना पनपने लगी। जाति और वर्ण के संदर्भ में दलित जीवन की समस्याएँ आमतौर पर देखी जाती हैं। जाति के नाम पर मनुष्य अपने को प्रतिष्ठित करने केलिए गरीब लोगों के साथ दुर्व्यवहार करता है। संजीव ने अपनी कहानियों में दलित जीवन की विभिन्न समस्याओं, यातनाओं एवं शोषण को बडी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है, संजीव की अनेक कहानियों में दलित जीवन की त्रासदी, अन्याय, शोषण आदि का यथार्थ चित्रण विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है।

"जब नशा फटता है" कहानी में संजीव ने उपेक्षित दलित जीवन का चित्रण संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत किया है। कहानी में मेहतर (भंगी) जातियों के लोग सदियों से मैला ढोने का काम करते हैं। आज भी दलित लोग शौचालय, सेप्टिक टैंक, झाड़ू पोछा आदि साफ करने के कामो में ही वे लोग लगे रहते हैं। कोई सवर्ण इन कामों को नहीं करते। यह एक नियति - सी बन गयी है कि दलित ही ये काम करते हैं। कहानी का जावीर चाचा अपनी बद हालत को इन्स्पेक्टर के सामने बताते हैं "कैसे बताएँ, साहेब? ये-ई समझ लो, हम लोग चार-चार बोतल दारु चढ़ा के सेप्टिक टैंक में घुसते न वैसे ई आपका जात धरम, भगवान भी नशा है - एतना-एतना नशा नय पिलाओ तो हम आप लोग का नरक कैसे साफ करें?... कभी कभी जब बीच में ही नशा फटता है तो मत पूछो कि कैसा लगता है। सबकुछ बदबू देने लगता है एतना बदबू कि दिमाग का नस तडक जाए?" इसप्रकार अनिच्छा से ही उन लोगों को यह काम करना पड़ता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि जिस समाज से ये लोग आते हैं उनको कोई उच्च काम नहीं दिया जाता। मजबूरन इनको यह काम करना पड़ता है। इसी कहानी का रामकुमार कहता है कि जातिपात तो भगवान वे बनाई नहीं तो हमें ऐसा काम करने केलिए मजबूर क्यों किया जा रहा है। आदिवासी समाज में साक्षरता का दर बहुत कम है। आजादी के 75 साल बाद भी आदिवास समाज में शिक्षा की समस्या बनी हुई है। सरकार द्वारा शिक्षा का व्यापक प्रचार करने के बावजूद ये लोग निरक्षरता की चक्की में पिसते जा रहे हैं। यहाँ दोष दोनों का है। शिक्षा की सुविधाएँ इन लोगों तक पहुँचाने में सरकार असमर्थ हैं तो इन सुविधाओं का फायदा उठाने में ये लोग असमर्थ हैं। कारण जो भी आदिवासी समाज के सामने शिक्षा का विस्तृत रूप में प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती है। भ्रष्ट राजनीति के कारण आदिवासी समाज केवल वोट बैंक तक सीमित रह जाता है। हमारे प्रजातंत्रिक देश में आज भी पैसों के लालच दिखाकर या गुडावर्दी के बल पर चुनाव जीते जाते हैं। रुपयों के लालच में सहीगलत का निर्णय भी हम ले नहीं पाते। इसी तथ्य को दर्शाती है 'भूमिका' जिसमें 'भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ चित्रण किया गया है। आदिवासी बस्ती को खाली करने हेतु सेठ पैसे देकर बस्ती में आग लगावाकर उजाड़ देते हैं। फिर वही सेठ ही धर्मात्मा बनकर मुआवजा बाँटता है। यह उनकी भ्रष्ट राजनीति है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि शोषित व पीड़ित आदिवासी समाज संजीव के लेखन के केंद्र में है। उनकी कहानियों में आदिवासी जीवन का यथार्थ, उनके रीति -रिवाज, शोषण, व अत्याचार के कारण तथा संघर्षमय जीवन का चित्रण संवेदना के स्तर पर किया गया है और यह बोध जगाया गया है कि आदिवासी समाज के प्रति स्वस्थ व सहज संवेदना की ओर संकेत किया है। इसी संवेदना को आधार बनाकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें आदिवासी जीबन की बेचैनी को अभिव्यक्ति मिली। जीवन के पार, दुनिया की सबसे हसीन औरत, महामारी, लिटरेचर, हिमरेखा आदि कहानियों के साथ-साथ जंगल जहाँ शुरु होता है, धार, सावधान नीचे जग है, पाँव तले की धूप, फांस आदि उपन्यासों में आदिवासी समाज की तमाम समस्याओं को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।

****

संदर्भ सूची :-

1. संजीव की कथासाहिय् मे आदिवासी लोक-संस्कृति, डॉ. गजानन किशन राव पोलेनवार.
2. संजीव की कथा यातेंराः पहला पडाव
3. संजीव की कथा यातराः दूसरा पडाव.
4. संजीव की कथा यातराः तीसरा पडाव